पूज्य लालचंदभाई के प्रवचन
श्री समयसार, कलश १
अहमदाबाद, दि. २२-०६-१९८९
प्रवचन नंबर १२८

Version 1

ॐ भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेव के सम्बन्ध में उल्लेख।

चंद्रगिरि पर्वत का शिलालेख, उसका अर्थ।

अर्थ:- कुन्द पुष्प की प्रभा धारण करने वाली जिनकी कीर्ति द्वारा दिशायें विभूषित हुई हैं, जो चारणों के----चारण ऋद्धिधारी महामुनियों के सुंदर हस्तकमलों के भ्रमर थे और जिन पवित्रात्मा ने भरतक्षेत्र में श्रुत की प्रतिष्ठा की है, वे विभु कुंदकुंद इस पृथ्वी पर किससे वंद्य नहीं हैं? सब के द्वारा वंद्य हैं।

फिर दूसरा शिलालेख **विंध्यगिरि-शिलालेख,** वह चंद्रगिरि यह विंध्यगिरि।

अर्थ:- यतीश्वर [श्री कुंदकुंदस्वामी] रजःस्थान-भूमितल को---छोड़कर चार अंगुल ऊपर आकाश में गमन करते थे उसके द्वारा मैं ऐसा समझता हूँ कि-- वे अंतर में तथा बाह्य में रज से [अपनी] अत्यंत अस्पृष्टता व्यक्त करते थे [---अंतर में वे रागादिक मल से अस्पृष्ट थे और बाह्य में धूल से अस्पृष्ट थे]।

अब एक दर्शनसार नाम का शास्त्र है, उसके कर्ता देवसेन आचार्य हो गए। उनका एक श्लोक है। उसका अर्थ।

अर्थ:- [महा विदेहक्षेत्र के वर्तमान तीर्थंकरदेव] श्री सीमंधरस्वामी से प्राप्त हुए दिव्यज्ञान द्वारा श्री पद्मनन्दिनाथ ने [श्री कुंदकुंदाचार्य देव ने] बोध न दिया होता तो मुनिजन सच्चे मार्ग को कैसे जानते?

अब श्रीमद् राजचंद्रजी का उल्लेख करते हैं।

हे कुंदकुंदादि आचार्यो! आपके वचन भी स्वरूपानुसंधान में इस पामर को परम उपकारभूत हुए हैं। उसके लिये मैं आपको अत्यंत भक्तिपूर्वक नमस्कार करता हूँ।

स्वरूपानुसंधान में अर्थात् भूतकाल में इस मनुष्यदेह के पहले, मनुष्यभव के पहले, पिछले भव के अंदर मुझे समकित तो हो गया था लेकिन सम्यग्दर्शन छूट गया था, और मैं यहाँ आया और फिर से आपके शास्त्र हाथ में आने पर मुझे फिर से अनुसंधान हो गया। अनुभव हो गया इसलिए मैं आपको नमस्कार करता हूँ। अर्थात् भूतकाल में हम समकिती थे और वर्तमान में फिर से आपके वचन के योग से आत्मा का भान हुआ अर्थात् पूर्वभव में "हमको समकित था" ऐसा उन्होंने डंके की चोट पर कहा। क्या कहा? ज्ञान के विषय में अनुसंधान टूट गया था, वह फिर से अनुसंधान हो गया। जुड़ गया। ज्ञान चेतना प्रगट हो गई।

अब पूज्य गुरुदेव के हस्ताक्षर: **ॐ नमः सिद्धेभ्यः भगवान श्री कुंदकुंदाचार्यदेव समयप्राभृत में कहते हैं कि, 'मैं जो यह भाव कहना चाहता हूँ, वह अन्तर के आत्मसाक्षी के प्रमाण द्वारा प्रमाण करना क्योंकि यह अनुभवप्रधान ग्रंथ है, उसमें मुझे वर्तते स्व-आत्मवैभव द्वारा कहा जा रहा है।' ऐसा कहकर छठ्ठी गाथा शुरू करते हुए आचार्य भगवान कहते हैं कि, 'आत्मद्रव्य अप्रमत्त नहीं और प्रमत्त नहीं है अर्थात् उन दो अवस्थाओं का निषेध करता मैं...** देखा, **निषेध करता मैं एक जाननहार अखंड हूँ...** आहाहा! आया, **एक जाननहार अखंड हूँ...** शुरुआत ही यहाँ से होती है। आत्मा जाननहार ही है। आहाहा! **मैं एक जाननहार अखंड हूँ - यह मेरी वर्तमान वर्तती दशा से कह रहा हूँ'। मुनित्वरूप दशा अप्रमत्त व प्रमत्त - इन दो भूमिका में हजारों बार आती-जाती हैं, उस भूमिका में वर्तते महा-मुनि का यह कथन है।**

समयप्राभृत अर्थात् समयसाररूपी उपहार। जैसे राजा को मिलने के लिए उपहार लेकर जाना होता है। उस भांति अपनी परम उत्कृष्ट आत्मदशारूप परमात्मदशा प्रगट करने के लिये समयसार जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वरूप आत्मा, उसकी परिणतिरूप उपहार देने पर परमात्मदशा-सिद्धदशा प्रगट होती है।

यह शब्दब्रह्मरूप परमागम से दर्शित एकत्वविभक्त आत्मा को प्रमाण करना। 'हाँ' से ही स्वीकृत करना, कल्पना नहीं करना।; इसका बहुमान करनेवाला भी महाभाग्यशाली है। (स्व हस्ताक्षर में) सद्गुरुदेवश्री के हृदयोद्गार।

अब आप स्तुति बोलो, इसके बाद स्तुति है।

(श्री समयसारजी - स्तुति)

(हरिगीत)

संसारी जीवनां भावमरणो टाळवा करूणा करी,
सरिता वहावी सुधा तणी प्रभु वीर! तें संजीवनी;
शोषाती देखी सरितने करूणाभीना हृदये करी,
मुनिकुंद संजीवनी समयप्राभृत तणे भाजन भरी।

(अनुष्टुप)

कुंदकुंद रच्युं शास्त्र, साथिया अमृते पूर्या,
ग्रंथाधिराज! तारामां भावो ब्रह्मांडना भर्या।

(शिखरिणी)

अहो! वाणी तारी प्रशमरस-भावे नीतरती,
मुमुक्षुने पाती अमृतरस अंजलि भरी भरी;
अनादिनी मूर्छा विष तणी त्वराथी उतरती,
विभावेथी थंभी स्वरूप भणी दोड़े परिणति।

(शार्दूलविक्रीडित)

तुं छे निश्चयग्रंथ भंग सघळा व्यवहारना भेदवा,
तुं प्रज्ञाछीणी ज्ञान ने उदयनी संधि सहु छेदवा;
साथी साधकनो, तुं भानु जगनो, संदेश महावीरनो,
विसामो भवक्लांतना हृदयनो, तुं पंथ मुक्ति तणो।
(वसंततिलका)
सुण्ये तने रसनिबंध शिथिल थाय,
जाण्ये तने हृदय ज्ञानी तणां जणाय;
तूं रूचतां जगतनी रूचि आळसे सौ,
तूं रीझतां सकलज्ञायकदेव रीझे।
(अनुष्टुप)
बनावुं पत्र कुंदननां, रत्नोना अक्षरो लखी;
तथापि कुंदसूत्रोनां अंकाये मूल्य ना कदी।
तथापि कहानवाणीना अंकाये मूल्य ना कदी।

ॐ श्री परमात्मने नमः। श्रीमद् भगवत्कुंदकुंदाचार्यदेवप्रणीत श्री समयसार,... पहला अधिकार, जीव अधिकार। **मूल गाथायें और आत्मख्याति नामक टीका का गुजराती अनुवाद।** पहले, इसका हिंदी अनुवाद करनेवाले जयचंद पंडितजी हैं। वे मांगलिक करते हैं। उसके बाद दूसरा मांगलिक आयेगा, अमृतचंद्राचार्य का, संस्कृत के टीकाकार और फिर तीसरा मांगलिक आयेगा, मूलकर्ता कुंदकुंद-भगवान का, ऐसे तीन प्रकार के मांगलिक से शुरूआत होती है।

श्री परमातम को प्रणमि, शारद सुगुरु मनाय।
समयसार शासन करूँ देशवचनमय, भाय ।।१।।
शब्दब्रह्मपरब्रह्म के वाचकवाच्यनियोग।
मंगलरूप प्रसिद्ध है, नमों धर्मधनभोग ।।२।।

श्री परमातम को प्रणमि... अर्थात् परमात्मा को नमस्कार करके, **शारद सुगुरु मनाय,...** जिनेन्द्र भगवान की वाणी द्रव्यश्रुत और आत्मज्ञानी गुरु-सुगुरु उनको नमस्कार करके **समयसार शासन करूँ देशवचनमय, भाय।** वर्तमान में प्रचलित जो जयपुर की ढूंढारी भाषा है उसके द्वारा मैं इसका अनुवाद करूँगा, और यह मुझे शासन के ऊपर प्रेम आया है। **शब्दब्रह्मपरब्रह्म के वाचकवाच्यनियोग।** शब्दब्रह्म है वह वाचक है और परब्रह्म अर्थात् शुद्धात्मा उसका वाच्य है। उसका वाचक '**वाचकवाच्य नियोग**', नियोग- विशेष योग होता है। शब्दब्रह्म वह ज्ञान है और उसका वाच्य शुद्धात्मा जो है, वह कैसा है, वो वाच्य बताते हैं। **मंगलरूप प्रसिद्ध है, नमों धर्मधनभोग।** ये बात प्रसिद्ध है। और मैं नमस्कार इसलिए करता हूँ कि मुझे धर्मरूपी धन की प्राप्ति हो और मैं आनंद का भोग करूं, यह हेतु है।

नय नय लहइ सार शुभवार, पय पय दहइ मार दुःखकार।
लय लय गहइ पार भवधार, जय जय समयसार अविकार।।३।।

नय नय लहइ सार, नय नय लहइ सार शुभवार, बारम्बार बारम्बार बारम्बार इसका रटन करने पर नए-नए भाव आएंगे, और उससे जीव का हित होगा। **पय पय दहइ मार दुःखकार,** पद-पद पर दुःख का नाश होता है, ऐसा इसमें वाचक-वाच्य का नियोग है। **लय लय गहइ पार भवधार, लय लय गहइ पार भवधार।** यह भव भ्रमणरूपी जो दुःख है, उसका नाश होता है। **जय जय समयसार अविकार**। शुद्धात्मा अविकारी है, शुद्ध है उसकी मुझे प्राप्ति होओ, यह मेरा हेतु है।

शब्द, अर्थ अरु ज्ञान-समयत्रय आगम गाये, आगम का एक शब्द समय है, अर्थ समय है, और ज्ञान समय, ऐसे समयत्रय आगम की बात है। "शब्द" को समय कहते हैं, और "पदार्थ" को भी समय कहते हैं और उसके द्वारा जो "ज्ञान" प्रगट होता है- सम्यग्ज्ञान, उसको भी समय कहते हैं। तीन प्रकार के समयत्रय हैं। एक वाचक है। एक अर्थ वाच्य का पदार्थ है और उसका जो ज्ञान होता है उसको भी समय कहने में आता है।

मत, सिद्धांत, रु काल-भेदत्रय नाम बताये; अब कहते हैं **काल** अर्थात् स्वमत, स्वकाल। और **मत** अर्थात् जिनेन्द्र भगवान का मत और **सिद्धांत,** ऐसे तीन प्रकार के बताये। **काल** में जो वर्तमान जो अवस्था है, श्रुत पर्याय, उसको भी काल कहते हैं। और ये बाहर का काल, उसको काल कहते हैं। **मत** अर्थात् जिनेन्द्र भगवान का मत वह वास्तव में सच्चा मत है, और उसको **सिद्धांत** कहते हैं। ऐसे तीन प्रकार के भेदत्रय नाम बताये।

इनहिं आदि शुभ अर्थसमयवचके सुनिये बहु, अब शब्दसमय, अर्थसमय, और ज्ञानसमय जो कहे हैं, उसमें से कहते हैं कि **इनहिं आदि शुभ अर्थसमयवचके सुनिये बहु,** इन सब में जो सारभूत है वह शुद्धात्मा की कथा है, वह आप सुनना। शुद्धात्मा की कथा लिखी है इसमें, वह आप सब सुनना। अब सुनकर क्या करना? शब्द तो.., शब्द की बात की पहले, **सुनिये** ये शब्द का अर्थ किया। अब **अर्थ,** अर्थसमय में, छह द्रव्य को अर्थ कहते हैं और मत में भी बहुत से मत-मतांतर, उनको भी मत कहते हैं। यहाँ **अर्थसमय में** छह द्रव्य अर्थ हैं, उसमें **जीव नाम है सार**। छह द्रव्य में जो अर्थ है, उसमें एक शुद्धात्मा ही सारभूत है **सुनहु** सुनो **सहु**।

तातैं जु सार बिन कर्ममल शुद्ध जीव शुद्ध नय कहै, यह जो समयसार है **तातैं जु सार बिन कर्ममल**। शुद्धात्मा भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म से रहित वह शुद्ध जीव है- ऐसा शुद्ध नय कहता है। अर्थात् वास्तविक स्वरूप है उसको कहनेवाला एक शुद्धनय है।

इस ग्रंथ माँहि कथनी सबै समयसार बुधजन गहै।।४।। कथनी तो नवतत्व की भरी है। बहुत प्रकार के कथन आयेंगे लेकिन कोई बुद्धिजन होगा, ज्ञानीजन होगा, कोई निकटभवी जीव होगा, वह समयसार को ग्रहण करेगा। **समयसार बुधजन गहै**, इस ग्रंथ में कथनी तो बहुत हैं। स्वांग की बातें बहुत आयेंगी, लेकिन बुधजन होंगे विचक्षण, वे शुद्धनय द्वारा शुद्ध आत्मा का ग्रहण करेगें, बस।

नामादिक छह ग्रंथमुख, तामें मंगल सार।
विघनहरन नास्तिकहरन, शिष्टाचार उचार।।५।।

यह मांगलिक करने का कारण यह है कि कोई विघ्न नहीं हो, पूरा हो जाये और नास्तिक मत का परिहार हो जाये, वह शिष्टाचार का उच्चार है।

समयसार जिनराज है, स्याद्वाद जिनवैन।
मुद्रा जिन निर्ग्रन्थता, नमूं करै सब चैन।।६।।

यहाँ देव, गुरु, शास्त्र तीनों को लिया है। **समयसार जिनराज है,** जिनराज देव कौन हैं? कि यह शुद्धात्मा देव है। और जिनवाणी कैसी है? स्याद्वाद जिसकी मुद्रा है, ट्रेडमार्क है, उसको जिनवचन कहने में आता है। **स्याद्वाद जिनवैन** और **समयसार जिनराज**। शुद्धात्मा वह जिनराज है। फिर **मुद्रा जिन निर्ग्रन्थता,** गुरु का लक्षण, जिनकी अंतर और बाह्य निर्ग्रन्थदशा हो, वह जिन की मुद्रा है। **नमूं करै सब चैन।** इन तीनों को नमस्कार करने पर मुझे सुख की प्राप्ति होगी। चैन अर्थात् सुख की प्राप्ति होगी। ऐसी भावना भाता हूँ।

इस प्रकार मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करके श्री कुंदकुंद आचार्यकृत गाथाबद्ध समयप्राभृत ग्रंथ की श्री अमृतचंद्र आचार्यकृत आत्मख्याति नामक जो संस्कृत टीका है उसकी देशभाषा में वचनिका लिखते हैं।

अब जो मांगलिक करनेवाले हैं आचार्य भगवान टीकाकार, उनका मांगलिक।

प्रथम, संस्कृत टीकाकार श्रीमद् अमृतचंद्राचार्यदेव ग्रंथ के प्रारम्भ में (पहले श्लोक द्वारा) मंगल के लिए इष्टदेव को नमस्कार करते हैं:-

ऐसा शिष्टाचार है कि कोई भी शास्त्र की रचना करें ज्ञानीजन, तो इष्टदेव को पहले नमस्कार करते हैं, कि जिससे कि ये शास्त्र पूरा हो जाये। कोई विघ्न आये नहीं और परिपूर्णता हो। ऐसा एक व्यवहार है। और उस प्रकार से इष्टदेव को नमस्कार भी करते हैं। अब इष्टदेव को नमस्कार.., अभी तक बहुत शास्त्रों में मैंने पढ़ा। जितने पढ़ने में आये उतने, उनमें इष्टदेव को नमस्कार करते हुए या अरिहंत को नमस्कार, या सिद्ध भगवान को नमस्कार, या पंचपरमेष्ठी को नमस्कार करते हैं। उसमें आ जाता है। लेकिन पर को नमस्कार करने का व्यवहार है, पर को नमस्कार करने का, परमात्मा को।

(किन्तु) इसकी कोई विशेषता है। ऐसी हमारी बहुत बार बात होती है कि गुरु से ज्यादा शिष्य तेज है। अपनी बहुत बार बात होती है। उसमें (टीका में) कहा कि प्रथम आत्मा को जानना। ये (टीकाकार) कहते हैं कि जानने में आ ही रहा है। ऐसी ऐसी विशेषता तो बहुत जगह पर हमने देखी। इसमें भी एक विशेषता है। इष्टदेव को नमस्कार करते हैं। इष्टदेव कौन हैं? इष्ट अर्थात् जिनको नमस्कार करने से हित हो जाये।

मुमुक्षु:- हित हो जाये, इसका नाम इष्ट।

उत्तर:- इष्टदेव हैं न, इष्टदेव। जिन देव को नमस्कार करने से इष्ट मतलब साध्य की सिद्धि हो, जिनसे हित की प्राप्ति हो, उनको हम देव कहते हैं। तो इन्होंने सीधा शुद्धात्मा को नमस्कार (लिखा)।

नमो सिद्धेभ्य नहीं, नमो अरिहंताणं नहीं, और वर्तमान वर्तते तीर्थंकर को नमस्कार करता हूँ- ऐसा भी नहीं। और भूत, भविष्य के, वर्तमान तीर्थंकर को नमस्कार करता हूँ- ऐसा भी नहीं। कोई अदभुत प्रतिभाशाली व्यक्ति हो गये, जबरदस्त। अमृतचंद्राचार्य आहाहा! गागर में सागर भर दिया। एक श्लोक में ४१५ गाथा भर दी हैं। मूल जीवतत्त्व कहा और नवतत्त्व की बात भी की उसमें। एक श्लोक में नवतत्त्व (हैं) ऐसी भी बात की, स्वांग की और शुद्धात्मा की बात की। एक ही श्लोक में सब कह दिया। उनकी शक्ति ही ऐसी है। अब श्लोक कहते हैं टीकाकार।

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्व भावन्तरच्छिदे ।।१।।

शुद्ध आत्मा को नमस्कार तो स्वानुभूति से होता है न! **चित्स्वभावाय भावाय सर्व भावन्तरच्छिदे** अब हम जयचंद पंडितजी ने जो उसका अर्थ किया है, उसका विस्तार किया है, वह लेते हैं।

श्लोकार्थ:- (नमः समयसाराय) पहले समय का अर्थ करते हैं। **'समय' अर्थात् जीव नामका पदार्थ।** समय के बहुत अर्थ होते हैं। अन्यमत को समय कहते हैं, छह द्रव्य को समय कहते हैं, काल को, पर्याय को समय कहते हैं।

यहाँ **'समय' अर्थात् जीव नामक पदार्थ।** अब जीव नाम का पदार्थ कहा। मैं पदार्थ को नमस्कार नहीं करता। जीव नाम के पदार्थ को नमस्कार नहीं करता, उसमें..

मुमुक्षु:- पदार्थ पूज्य नहीं हैं।

उत्तर:- पूज्य नहीं है। प्रमाणज्ञान का विषय पूज्य नहीं है, इसमें से निकलती है (यह बात)। 'समय' अर्थात् जीव नामक पदार्थ। और फिर समय की व्याख्या भी मूल में आयेंगी बहुत सी- पदार्थ की व्याख्या- लेकिन उन्होंने तो इसमें ही लिख दिया 'समय' अर्थात् पदार्थ बस। पदार्थ में द्रव्य, गुण, पर्याय सब आ गया, उसको मैं नमस्कार नहीं करता।

मुमुक्षु:- सार, शुरूआत यहीं से है। प्रमाण पूज्य नहीं है। पदार्थ पूज्य नहीं है।

उत्तर:- यह समय का अर्थ किया। अभी 'सार' का अर्थ बाकी है। **नमः समयसाराय** नमः समय नहीं, नमः समय नहीं। समयसाराय। अब सार का अर्थ करते हैं। सार, उसमें सार आहाहा! अर्थात् कि जो उपादेय है, जो नमस्कार करने योग्य है। **जो द्रव्यकर्म,** आठ कर्म से रहित, चार प्रकार के **भावकर्म** आस्रवों से रहित, इन्द्रियज्ञान से भी रहित, वो भावकर्म के खाते में जाता है।

शरीरादि **नोकर्म** उससे **रहित**। देखो, रहित के ऊपर लाइन खींची है, 'रहित 'के ऊपर लाइन की है। देखो! रहित, जब तक इस रहित के ऊपर ध्यान खिंचता नहीं है तब तक द्रव्य का निश्चय, दृष्टि का विषय दृष्टि में नहीं आता। रहित ही है। प्रथम से ही रहित है। **रहित शुद्ध आत्मा।** आहाहा! राग से, पुण्य पाप से रहित है शुद्ध आत्मा। मिथ्यात्व के कषाय से रहित है, आस्रव से रहित है।

रहित शुद्ध आत्मा, उसको मेरा नमस्कार हो। नमस्कार करता हूँ- ऐसा नहीं, उसको मेरा नमस्कार हो। मेरे नमस्कार के योग्य इस जगत में कोई पदार्थ है तो मेरा शुद्धात्मा (ही है)। मेरा

नमस्कार मेरा आत्मा झेल सकता है, मेरा नमस्कार अन्य कोई नहीं झेल सकता। क्योंकि मेरा नमस्कार जिसको होता है वह उस रूप हो जाता है। तो मेरा नमस्कार सिद्ध भगवंत झेल सकते नहीं क्योंकि मेरी परिणति वहाँ तो जाती नहीं, उनसे अनन्य होती नहीं। इसलिए मेरा शुद्धात्मा ही मेरा नमस्कार झेल सकता है। आहाहा..! समंतभद्राचार्य ने नहीं कहा?

मुमुक्षु:- समंतभद्राचार्य ने,

उत्तर:- 'तुम्हारा देव मेरा नमस्कार नहीं झेल सकेगा' राजा से कहा। 'ऐसा! इतना अधिक तुम्हारा जोर(बल) है?' 'तुम्हारी यह है न शंकर की प्रतिमा मूर्ति, मेरा नमस्कार नहीं झेल पायेगी।' 'ऐसा? मैं देखता हूँ।' राजा को तो (क्रोध) चढ़ गया था, नहीं तो फांसी देता, समझ गये? क्योंकि यहाँ सब खाते थे ना रोज, बाद में शिकायत हुई, पकड़े गये। बस! मंत्र बोला और भगवान की प्रतिमा अंदर से बाहर आई। ऐसा! ये दिगंबर मुनि ऐसे होते हैं!

निश्चय की पराकाष्ठा एक श्लोक में। शुरुआत से निश्चय की बात की। शुरुआत से ही व्यवहार को उड़ाया। ऐसा कहूँ तो चलेगा। व्यवहार को उड़ा दिया। क्योंकि व्यवहार के ऊपर लक्ष्य रहे, और निश्चय प्राप्त हो जाये, ऐसा नहीं है। पंचपरमेष्ठी पर लक्ष्य हो, आहाहा! तो आत्मा को नमस्कार नहीं हो सकता। यह तो समयसार है न, उसको नमस्कार करने से प्राप्ति सब होती है। शुरुआत में ही। आहाहा!

समय अर्थात् पदार्थ। मैं पदार्थ को नमस्कार नहीं करता, मैं पंचपरमेष्ठी को नमस्कार नहीं करता। मैं तो जो भावकर्म, द्रव्यकर्म, नोकर्म से रहित है, उसको मैं नमस्कार करता हूँ। नमस्कार हो। नमस्कार हो। आहाहा! टीकाकार भी ऐसे हुए हों! जयचंद्रपंडित कैसे (ज्ञानी) हुए! 'नमस्कार हो'।

वह कैसा है? क्योंकि यह श्लोक है न, वह पूरे समयसार की नींव है। ४१५ गाथा का इसमें रहस्य भरा है। जहाँ जहाँ रहस्यवाली बात आये वहाँ अपने को थोड़ा विस्तार करना चाहिए। चिंतवन करना, मनन करना चाहिए (फिर आगे जाना), क्योंकि जैसे बने वैसे, बहुत गाथाओं का स्वाध्याय कर लेना है (ऐसी हठ नहीं होनी चाहिए), मेरा भाव वह है। इसलिए जहाँ ऐसी महत्व की बात हो तो वहाँ रुक रुक कर.. ... उसको मेरा नमस्कार हो। वह कौन है? जिसको मैं नमस्कार करता हूँ **वह कैसा है?** नमस्कार तो मैं समयसार को करता हूँ शुद्धात्मा को। अब कहते हैं कि शुद्धात्मा कैसा है? कि नास्ति से तो मैंने कहा। लेकिन अस्ति से वह कैसा है? रहित तो कहा।

मुमुक्षु:- पहले रहित से बात की।

उत्तर:- रहित से बात की, व्यवहार का निषेध किया। अब यहाँ निश्चय की बात करते हैं कि वह किससे सहित है। **(भावाय) वह कैसा है? (भावाय) शुद्ध सत्तास्वरूप वस्तु है।** पहले **भावाय** कहकर अस्तित्व सिध्द किया। शुद्ध जीव अस्तिकाय। अस्ति सिद्ध करें तो ही उसके गुण सिद्ध होते हैं। पदार्थ की सिद्धि के लिए अस्ति बहुत जरूरी है। इसलिये **(भावाय)** शुद्ध सत्तास्वरूप वस्तु है। भावाय में शुद्धाशुद्ध नहीं लिया, क्योंकि पहले बात की थी कि जिसको मैं नमस्कार करता हूँ वह शुद्धात्मा है और अशुद्ध पर्याय मात्र से रहित है।

'संयोगलक्षणाभावा' मेरे से भिन्न है। **शुद्ध सत्तास्वरूप वस्तु है।** अस्तित्व सिद्ध किया। पदार्थ सिद्ध किया। पदार्थ में से जो हटाने योग्य था उसको बाहर निकाला और शुद्धात्मा सिद्ध किया। और वह होनेपने है। है-है और है। है, अस्तिरूप है।

मुमुक्षुः- उसरुप ही है। उसरूप ही है।

उत्तरः- उसरूप ही है। अनादिअनंत है। है, है और है। **भावाय** आहाहा! यह **भावाय** कहकर दूसरों का खंडन करते हैं, अभाववादी (मत) का। **इस विशेषणपद से,** अस्तित्व है न, आहाहा! **इस विशेषण पद से सर्वथा अभाववादी नास्तिकों का मत खंडित हुआ**। कि आत्मा है ही नहीं। आत्मा है ही नहीं। आत्मा जैसी वस्तु ही नहीं है कोई। ऐसे जो अभाववादी हैं- नास्तिक उनके मत का खंडन किया। **भावाय** है (कहकर)।

अब, जो है, वस्तु है, तो उसका कोई असाधारण गुण होना चाहिए। **चित्स्वभावाय**- उसके गुण की बात करते हैं। पदार्थ की बात की। पदार्थ में से कचरा निकालकर शुद्धात्मा की बात की। उसका होनापना अस्तित्व, वह सिद्ध किया। अब उसका कोई असाधारण गुण कहते हैं- **चितस्वभावाय।** वह जो सत् था, सत् है वह भी उसका गुण है लेकिन साधारण गुण है। अस्तित्व गुण था वह। अस्तित्व गुण था लेकिन अस्तित्व गुण है उसमें दोष आ जाता है, तो अस्तित्व तो पुद्गल का भी है। ऐसा नहीं (इतने से आत्मा की सिद्धि नहीं होती, अतः असाधारण गुण बताते हैं)।

अब विशेषगुण से बात करते हैं। **चित्स्वाभावाय जिनका स्वभाव चेतना गुणरूप है**। चेतनागुणमय है। पर्याय की बात नहीं है अभी। द्रव्य सिद्ध किया, उसका अस्तित्व सिद्ध किया, उसका गुण सिद्ध करते हैं। और अब गुण की पर्याय सिद्ध करेंगे। द्रव्य हो तो गुण होता है और गुण हो तो पर्याय भी होती है उसकी।

चेतनागुणरूप है। चेतनागुणमय है। **इस विशेषण से गुण-गुणी का सर्वथा भेद माननेवाले नैयायिकों का निषेध हुआ।** नैयायिक मत होगा वह गुण और गुणी को भिन्न मानता होगा। यहाँ कहते हैं गुण और गुणी एक सत्ता है। गुणी गुणमय होता है, इसप्रकार। उसमें भी अस्तित्वगुण तो सामान्य लिया। अब विशेषगुण (लिया) चेतना। **और वह कैसा है?** इसमें क्या है, कि इसमें बहुत मतों का खंडन करते हैं, वह आ जाता है। खंडन ऐसा शब्द नहीं लिखते फिर भी आ जाता है उसके अंदर।

इन्होंने तो बहुत अध्ययन किया है जयचंद्र पंडितजी ने, अन्यमत के शास्त्रों का, इसलिए साथ-साथ यह-यह क्यों अस्तित्व क्यों कहा? कि कितने ही नास्तिक हैं आत्मा को मानते नहीं इसलिए अस्ति सिद्ध की। फिर गुण और गुणी अलग हैं सर्वथा- ऐसा माननेवाले, (उनका निषेध करके कहा कि) वह कथंचित् अभेद है, ऐसा। **इस विशेषण से गुण-गुणी का सर्वथा भेद** अर्थात् गुण यहाँ रहे (दूसरी जगह) और गुणी यहाँ रहे (दूसरी जगह) ऐसा नहीं है।

वह कुदरती है कि आज हमने शुरू किया। **इस विशेषण से सर्वथा भेद माननेवाले** कथंचित् भेद तो जैन दर्शन मानता है पर सर्वथा भेद नहीं मानता, गुण और गुणी का, इसलिए सर्वथा शब्द उपयोग किया, ऐसा! **नैयायिकों का निषेध हुआ। और वह कैसा है?** आहाहा! अब ऐसा जो

अस्तिस्वरूप आत्मा चेतनागुणमय आत्मा, वह वर्तमान अनुभव में आता है या नहीं? ऐसा कहते हैं। आप कहते हो (कि) 'है'। आप कहते हो चेतना गुणमय, लेकिन कुछ अनुभव में आता है कि नहीं? कि हाँ, आता है।

(स्वानुभूत्या चकास्ते) आहाहा! द्रव्य, गुण और पर्याय। उसकी पर्याय ली। **अपनी ही** 'ही' शब्द है। **अपनी ही अनुभवनरूप क्रिया से प्रकाशमान है...** राग की क्रिया से प्रकाशित नहीं होता। अपने अनुभव से अनुभव में आये ऐसी वस्तु है। अपने ज्ञान में आत्मा ज्ञेय होता है। आहाहा! जानने में आता है। **अनुभवनरूप क्रिया से प्रकाशमान है, अर्थात् अपने को अपने से ही जानता है...** अपने को अपने से ही जानता है। छठ्ठी गाथा में लिया है। अपने को अपने से ही जानता है। जानता है अर्थात् प्रगट करता है।

इस विशेषण से, आत्मा को तथा ज्ञान को अर्थात् पर्याय को। अब गुणगुणी का अर्थ, पर्याय को, **ज्ञान को सर्वथा परोक्ष ही माननेवाले...,** सर्वथा भिन्न नहीं। कोई मत ऐसा है कि आत्मा अरूपी है इसलिए छद्मस्थ के ज्ञान में, अनुभव में नहीं आता। **सर्वथा परोक्ष ही माननेवाले,** कथंचित् परोक्ष तो मानता है जैनदर्शन, लेकिन सर्वथा परोक्ष नहीं मानता। स्वसंवेदन से प्रत्यक्ष जानता है, ऐसा।

सर्वथा परोक्ष ही माननेवाले जैमिनीय-भट्ट-प्रभाकर के भेदवाले मीमांसकों के मत का खण्डन हो गया; द्रव्य और पर्याय सर्वथा भिन्न हैं, अर्थात् कि पर्याय द्वारा वह परोक्ष ही रहता है, प्रत्यक्ष नहीं होता आत्मा। यह अहमदाबाद में बहुत चर्चा हुई थी। समझ गये? गजा बहन, चौरेजी और अन्य तीन जन आये थे। टाइम लेकर बैठे थे। परोक्ष ही है "आदियेपरोक्षं" -प्रत्यक्ष है ही नहीं। वह यह। (ऐसा मानकर) अन्यमति हो गया।

वर्तमान में ज्ञान में मध्यस्थ नहीं होता वह अन्यमति है। एक जीव (भाई)तो ऐसा निकला (कहे) कि ज्ञान में आत्मा अनुभव में आता ही नहीं। ज्ञान पर को ही जानता है। दर्शन ही स्व को देखता है। मैंने कहा (अभी जीभ है, दुबारा) जीभ नहीं मिलेगी। बोला गया मुझसे! व्यक्तिगत बात थी ... क्या कहते हो? ज्ञान में आत्मा नहीं जानने में आता? वह ये। सर्वथा परोक्ष माननेवाले इस प्रकार। प्रत्यक्ष हो सकता नहीं। यह बहन ऐसा है कि, अकेले आगम के अभ्यास से समाधान नहीं आता। साथ में अध्यात्म शास्त्रों का अभ्यास गहरा चाहिए।

मुमुक्षु:- मार्ग अध्यात्म से ही मिलता है।

उत्तर:- मिलता है। आगम से तो पदार्थ की सिद्धि होती है।

मुमुक्षु:- पदार्थ को ....

उत्तर:- '**मीमांसकों के मत का खण्डन हो गया; परोक्ष ही माननेवाले जैमिनीय-भट्ट-प्रभाकर के मत का खण्डन हो गया; तथा ज्ञान अन्य ज्ञान से जाना जा सकता है,'** यह दूसरा मत। पहला मत आया सर्वथा परोक्ष, दूसरा मत ऐसा कहता है कि, दूसरा दूसरे को जानता है स्वयं स्वयं को नहीं जान सकता। केवली अपने आत्मा को.. मेरे आत्मा को केवली जानते हैं, ऐसा कहता है। मैं मेरे आत्मा को नहीं जान सकता- ऐसा एक मत है। केवली तो जानते ही हैं। ऐसा आया, देखो! **तथा**

ज्ञान अन्य ज्ञान से जाना जा सकता है, स्वयं अपने को नहीं जानता - ऐसा माननेवाले नैयायिकों को भी प्रतिषेध हो गया। बराबर!

अब उसके सामर्थ्य की बात करते हैं। स्वभाव की बात तो हो गई।

मुमुक्षु:- स्वयं अपने को ही जानता है।

उत्तर:- वह स्वयं अपने को ही जानता है वह उसका स्वभाव है। अब ऐसा स्वभाव जिसको प्रगट हुआ पर्याय में, उसका सामर्थ्य क्या है? वह बताते हैं।

सर्वभावान्तरच्छिदे आहाहा! **अपने से अन्य सर्व जीवाजीव, चराचर पदार्थों को सर्व क्षेत्रकालसंबंधी, सर्व विशेषणों के साथ, एक ही समय में जाननेवाला है। इस विशेषण से, सर्वज्ञ का अभाव माननेवाले मीमांसक आदि का निराकरण हो गया।** केवलज्ञान में एक समय मात्र में, आहाहा! जीव, अजीव, जीव चराचर पदार्थ, भूत भविष्य, वर्तमान एक समय में ज्ञात हो जाते हैं। ऐसा ज्ञान का सामर्थ्य है। केवलज्ञान का ऐसा सामर्थ्य है, तो श्रुतज्ञान में उस प्रकार से आता है। क्योंकि श्रुतज्ञान भी उसके जैसा ही है। लोकालोक को जानता है। जाननहार जानने में आता है। एक ही समय में सबको जाननहार जानने में आता है भूत, भविष्य, वर्तमान। केवलज्ञान की मुख्यता होने पर **सर्व भावन्तरच्छिदे।** ऐसा क्यों कहा? कि इसमें देव को नमस्कार आ गया। इसमें देव को नमस्कार आया। स्वयं को जो जानता है वह स्वयं के केवलज्ञान को जानता है। और वह स्वयं का जो केवलज्ञान है, उसका स्वरूप कैसा है? भूत, भविष्य, वर्तमान तीनोंकाल को समयमात्र में जानता है। सब यहीं से (अंदर से) है।

मुमुक्षु:- यहीं से ही है सब, यहीं है।

उत्तर:- समर्थ आचार्य, उनको केवलज्ञान का दर्शन बारंबार होता है। **एक ही समय में जाननेवाला है। इस विशेषण से सर्वज्ञ का अभाव माननेवाले,** आहाहा! वर्तमान में इस काल में सर्वज्ञ हैं- ऐसा वे कहते हैं। कोई नहीं समझता यह। **सर्वज्ञ का अभाव माननेवाले मीमांसक आदि का निराकरण हो गया।** वे कहते हैं कि केवलज्ञान दिखाओ हमें! ऐसा कहते हैं, केवलज्ञान होता है तो महाविदेहक्षेत्र में। यहाँ कहाँ है? यहाँ केवलज्ञान है भरतक्षेत्र में। (इसप्रकार) **निराकरण हो गया।**

इस प्रकार के विशेषणों (गुणों) से शुद्धात्मा को ही... शुद्धात्मा को ही **इष्टदेव सिद्ध किया है** फिर से देखो! आहाहा! एक शुद्धात्मा ही इष्टदेव है। इष्ट अर्थात् हितरूप, सुखरूप, जिसका अवलंबन लेने पर आत्मा को सुख प्रगट होता है। इष्ट की सिद्धि (की), साध्य की सिद्धि। **इष्टदेव सिद्ध करके (उसे) नमस्कार किया है। आत्मा को ही इष्टदेव सिद्ध करके...**, ये (स्वयं का आत्मा) इष्टदेव है। 'शिव रमणी रमनार तुं, तुं ही देव का देव' यह ये। ये ध्वनि आई थी गुरुदेव को ... ..., **उसे नमस्कार किया है।**

बराबर, इसमें खास कोई पॉइंट (समझना) हो तो ...

मुमुक्षु:- एकदम बराबर। महा भाग्य हो तब ऐसा स्वरूप सुनने को मिलता है।

उत्तर:- भावार्थ:- यहाँ मंगल के लिए अर्थात् हित के लिए, सुख के लिए **शुद्ध आत्मा को**

नमस्कार किया है। यदि कोई यह प्रश्न करे कि, देखो स्पष्टीकरण करते हैं, **कि किसी इष्टदेव का नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया?** महावीर का, ऋषभदेव भगवान का, पार्श्वनाथ प्रभु का, आहाहा!

तो उसका समाधान इस प्रकार है :- वास्तव में इष्टदेव का सामान्य स्वरूप सर्वकर्मरहित, सर्वज्ञ, वीतराग, शुद्ध आत्मा ही है, इसलिये इस अध्यात्मग्रंथ में 'समयसार' कहने से इसमें इष्टदेव का समावेश हो गया। आहाहा! देखो! ये शुद्धात्मा के विशेषण कहे हैं। इष्टदेव का स्वरूप कैसा है? कि **सर्वकर्मरहित** एक, **सर्वज्ञ** दो, और **वीतराग** मूर्ति है प्रतिमा, वह **शुद्ध आत्मा ही है। इसलिये इस अध्यात्मग्रंथ में 'समयसार' कहने से इसमें इष्टदेव का समावेश हो गया।**

समयसार अर्थात् शुद्धात्मा को नमस्कार करने पर उसमें इष्टदेव का समावेश हो गया, **तथा एक ही नाम लेने में,** अब यदि एक नाम लेंगे तो संभवतः वे तर्क से खंडन करेंगे। **एक ही नाम लेने में अन्यमतवादी मतपक्ष का विवाद करते हैं।** कि तुमने महावीर को नमस्कार किया, तो ऋषभदेव रह गये, इस प्रकार। **उन सबका निराकरण, समयसार के विशेषणों से किया है। और अन्यवादीजन अपने इष्टदेव का नाम लेते हैं उसमें इष्ट शब्द का अर्थ घटित नहीं होता, उसमें अनेक बाधाएँ आती हैं, और स्याद्वादी जैनों को तो सर्वज्ञ वीतराग शुद्ध आत्मा ही इष्ट है। फिर चाहे भले ही उस इष्टदेव को परमात्मा कहो, परमज्योति कहो, परमेश्वर कहो, परब्रह्म** कहो, **शिव** कहो, **निरंजन** कहो, **निष्कलंक** कहो, **अक्षय** कहो, **अव्यय** कहो, **शुद्ध** कहो, **बुद्ध** कहो, **अविनाशी, अनुपम, अच्छेद्य, अभेद्य, परमपुरुष, निराबाध, सिद्ध, सत्यात्मा, चिदानंद, सर्वज्ञ, वीतराग, अर्हत्, जिन, आप्त, भगवान, समयसार इत्यादि हजारों नामों से कहो;** वापस अंतिम (नाम) समयसार लिया है। देखो! हें! उसको भूलते नही हैं। ये सब समयसार के ही नाम हैं, नामांतर हैं।

समयसार इत्यादि हजारों नामों से कहो; वे सब नाम कथंचित् सत्यार्थ हैं। सर्वथा एकांतवादियों को भिन्न नामों में विरोध है। स्याद्वादी को कोई विरोध नहीं है। इसलिये अर्थ को यथार्थ समझना चाहिए। उसका वाच्यार्थ, अर्थ समझना चाहिए, शब्द को नहीं।

प्रगटे निज अनुभव करै, सत्ता चेतनरूप;
सब-ज्ञाता लखिकें नमौं, समयसार सब-भूप।।१।।

आहाहा! **प्रगटे निज अनुभव करै**, अनुभव दशा हो आत्मा की और **सत्ता चेतनरूप** है, अस्तित्व कहा और चेतन- उसकी सत्ता, गुण कहा। **सब-ज्ञाता लखिकें** सब ज्ञाता हुए, कोई कर्ता-वर्ता है नहीं। **समयसार सब-भूप** आहाहा! सब में समयसार राजा है। आहाहा! भूप मतलब (राजा), ग्रंथों का अधिपति है। सर्व ग्रंथों का अधिपति- राजा है।

मुमुक्षुः- वैसे भी समयसार जीवराजा है।

उत्तरः- हाँ वह जीवराजा ही है और यह निमित्तपने है। ग्रंथाधिराज है, बस!

अब दूसरा श्लोक। एक श्लोक हुआ। कितने ही उल्लेख हुए, स्तुति हुई, समयसार की, बहुत

आ गया मांगलिक में। आहाहा! समय का अर्थ किया पदार्थ। किसी को नमस्कार नहीं। पदार्थ को समय कहते हैं, धर्मास्तिकाय भी समय है, सब का-- पदार्थ का नाम ही समय है। तदुपरांत दूसरों से अलग करने के लिए, जानता है और परिणमता है, ऐसा लेंगे।

पहले प्रमाण से सात प्रकार से सिद्धि करते हैं पदार्थ की। पहले श्लोक में ही देखो जीवतत्व लिया और संवर, निर्जरा और मोक्ष। छह तत्व में से। "स्वानुभूत्या चकासते"।

मुमुक्षु:- वह क्रिया ली है।

उत्तर:- वह क्रिया ली है।

मुमुक्षु:- स्वानुभूति की क्रिया ली है।

उत्तर:- एक ही क्रिया।

मुमुक्षु:- रागादि कोई आत्मा की क्रिया नहीं है।

उत्तर:- क्रिया ही नहीं है।

मुमुक्षु:- उससे तो रहित है आत्मा।

उत्तर:- इसलिए जीवतत्व, संवर, निर्जरा और मोक्ष- चार तत्व लिये अस्तिरूप से, अजीव को निकाल दिया। और पुण्य, पाप, आस्रव, बंध, इन पांच को निकाल दिया। इस तरफ चार, उस तरफ पांच इस प्रकार लिया है। अर्थात् अस्ति से ही बात की है। नास्ति की बात ही नहीं की।

क्योंकि जहाँ स्वानुभव होता है वहाँ अजीव का लक्ष्य छूट जाता है और आस्रव, बंध नहीं होता। संक्षिप्त करो तो तीन तत्व की नास्ति है। एक की अस्ति हुई और एक के आश्रय से तीन तत्व खड़े होते हैं नये; पर्याय में। संवर, निर्जरा, मोक्ष। इसलिए जीवतत्व की सिद्धि की है और उसका अवलंबन लेने पर मोक्षमार्ग प्रगट होता है ऐसा कहा। सब अलग कर दिया सब। मोक्षमार्ग की भी स्थापना की और मोक्षमार्ग का विषय कहा। स्वयं अपने को जानता है वह मोक्षमार्ग है।

मुमुक्षु:- **अनंतधर्मणस्तत्वं पश्यन्ति प्रत्यगात्मनः ।**
अनेकांतमयी मूर्तिर्नित्यमेव प्रकाशताम् ।।२।।

उत्तर:- [अनेकांतमयी मूर्तिः] उसका अर्थ करते हैं। **जिनमें अनेक अन्त (धर्म) हैं ऐसे जो ज्ञान तथा वचन उसमयी मूर्ती सदा ही प्रकाशरूप हो।** ये सरस्वती मूर्ती के दो अर्थ करेंगे। एक ज्ञान, वह भी सरस्वती है और वचन...।

बोलो! परम उपकारी पूज्य सद्गुरुदेव की जय हो!